कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबती का जन्म 19 फरवरी, 1925 को गुजरात पाकिस्तान में हुआ। भारत विभाजन से पहले कृष्णाजी पाकिस्तान वाले गुजरात के पंजाब में रहती थीं। इनकी पाठशाला स्तरीय शिक्षा पाकिस्तान में हुई। उच्च शिक्षा दिल्ली, शिमला और लाहौर में हुई। लाहौर के फतेहचन्द कॉलेज में पढ़ते समय देश विभाजन हुआ था, तब वे और उनका परिवार दिल्ली रहने के लिए आया था। समकालीन कहानी लेखिकाओं में कृष्णा सोबती अपने विशिष्ट व्यक्तित्व और साहित्य लेखन में अलग स्थान की हकदार हैं। 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अँधेरे के' उनके चर्चित उपन्यास हैं। 'बादलों के घेरे' नाम से कहानी संग्रह प्रकाशित है। जिसमें शामिल 'सिक्का बदल गया' इस कहानी ने उनकी पहचान बढ़ाई। उनका लेखन स्त्री के परिवार एवं समाज में स्थान को दर्शाता है। वे अपने परिवेश और जीवनानुभव से आत्मसात कर लिखती हैं। कथानक में अच्छे-बुरे प्रसंग को निडरता से, खुलेपन से अपने शब्दों में व्यक्त करती हैं, इसलिए 'बोल्डनेस' उनकी पहचान बन गई। अतः अविरत लेखन करते हुए 25 जनवरी, 2019 को वे स्वर्गवासी हुईं।

कथा सार

'सिक्का बदल गया' देश विभाजन पर लिखी कृष्णा सोबती की मौलिक कहानी है। शाहनी एक हिन्दू स्त्री है। उसके पति शाहजी जब जीवित थे तो उनका एक खास और बड़ा रुतबा था। दूर-दूर गाँवों तक फैली जमीनें, गाँव की जमींदारी, धन-दौलत सब कुछ था। शेरा नामक अनाथ बच्चे को उसने अपना बच्चा माना था। शाहजी की मृत्यु के बाद शाहनी शेरा और हुसैना के साथ रहती है। वह उन्हें अपना बेटा और बहू मानती। वक्त गुजरता गया और आज शाहनी को अपना गाँव, हवेली छोड़कर जाने की स्थिति आई। बाहर बवाल हो रहा था। मारने-मरने की बातें हो रही थीं। शाहनी अब सारी हवेली शेरा-हुसैना को देकर चली जाती है, क्योंकि अब सिक्का बदल गया है। प्रस्तुत कहानी शाहनी के माध्यम से देश विभाजन और विस्थापन की

पीड़ा को पूरी संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत करती है। शाहनी का हवेली छोड़कर जाते समय इस्माइल को—'रब्ब तुहानू सलामत रक्खे बच्चा, खुशियाँ बक्शे' कहना जाति धर्म से बढ़कर इन्सानियत की दुआ है। शेरे, खूनी शेरे का शाहनी के हवेली छोड़कर जाते समय दिल टूटना एक बच्चे का अपनी माँ के प्रति प्रेम है। यहाँ लेखिका ने धर्म से बढ़कर, देश की सीमाओं से बढ़कर इन्सानी रिश्ते, जज्बातों को पूरी गम्भीरता से प्रस्तुत किया है।

सिक्का बदल गया

खद्दर की चादर ओढ़े, हाथ में माला लिए शाहनी जब दरिया के किनारे पहुँची तो पौ फट रही थी। दूर-दूर आसमान के परदे पर लालिमा फैलती जा रही थी। शाहनी ने कपड़े उतारकर एक ओर रखे और 'श्रीराम, श्रीराम' करती पानी में हो ली। अंजलि भरकर सूर्य देवता को नमस्कार किया, अपनी उनींदी आँखों पर छींटे दिए और पानी से लिपट गई!

चनाब का पानी आज भी पहले-सा ही सर्द था, लहरें लहरों को चूम रही थीं। वह दूर सामने काश्मीर की पहाड़ियों से बर्फ पिघल रही थी। उछल-उछल आते पानी के भँवरों से टकराकर कगारे गिर रहे थे लेकिन दूर-दूर तक बिछी रेत आज न जाने क्यों खामोश लगती थी! शाहनी ने कपड़े पहने, इधर-उधर देखा, कहीं किसी की परछाईं तक न थी। पर नीचे रेत में अगणित पाँवों के निशान थे। वह कुछ सहम-सी उठी!

आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में न जाने क्यों कुछ भयावना-सा लग रहा है। वह पिछले पचास वर्षों से यहाँ नहाती आ रही है। कितना लम्बा अरसा है! शाहनी सोचती है, एक दिन इसी दरिया के किनारे वह दुलहिन बनकर उतरी थी। और आज...

आज शाहजी नहीं, उसका वह पढ़ा-लिखा लड़का नहीं, आज वह अकेली है, शाहजी की लम्बी-चौड़ी हवेली में अकेली है। पर नहीं, यह क्या सोच रही है वह सवेरे-सवेरे! अभी भी दुनियादारी से मन नहीं फिरा उसका! शाहनी ने लम्बी साँस ली और 'श्री राम, श्री राम', करती बाजरे के खेतों से होती घर की राह ली। कहीं-कहीं लिपे-पुते आँगनों पर से धुआँ उठ रहा था। टन-टन बैलों की घंटियाँ बज उठती हैं। फिर भी...फिर भी कुछ-कुछ बँधा-बँधा-सा लग रहा है। 'जम्मीवाला' कुआँ भी आज नहीं चल रहा। ये शाहजी की ही असामियाँ हैं। शाहनी ने नजर उठायी। यह मीलों फैले खेत अपने ही हैं। भरी-भरायी नई फसल को देखकर शाहनी किसी अपनत्व के मोह में भीग गई। यह सब शाहजी की बरकतें हैं। दूर-दूर गाँवों तक फैली हुई जमीनें, जमीनों में कुएँ—सब अपने हैं। साल में तीन फसल, जमीन तो सोना उगलती है। शाहनी कुएँ की ओर बढ़ी, आवाज दी, "शेरे, शेरे, हसैना, हसैना...।"

शेरा शाहनी का स्वर पहचानता है। वह न पहचानेगा! अपनी माँ जैना के मरने के बाद वह शाहनी के पास ही पलकर बड़ा हुआ। उसने पास पड़ा गंडासा 'शटाले' के ढेर के नीचे सरका दिया। हाथ में हुक्का पकड़कर बोला, ''ऐ...हसैना-सैना...।'' शाहनी की आवाज़ उसे कैसे हिला गई है! अभी तो वह सोच रहा था कि उस शाहनी की ऊँची हवेली की अँधेरी कोठरी में पड़ी सोने-चाँदी की सन्दूकचियाँ उठाकर...कि तभी 'शेरे शेरे...'। शेरा गुस्से से भर गया। किस पर निकाले अपना क्रोध? शाहनी पर! चीखकर बोला ''ऐ मर गईं एँ रब्ब तैनू मौत दे...''

हसैना आटेवाली कनाली एक ओर रख, जल्दी-जल्दी बाहिर निकल आई। ''ऐ आईं आँ क्यों छाबेले (सुबह-सुबह) तड़पना एँ?''

अब तक शाहनी नजदीक पहुँच चुकी थी। शेरे की तेजी सुन चुकी थी। प्यार से बोली, ''हसैना, यह वक्त लड़ने का है? वह पागल है तो तू ही जिगरा कर लिया कर।''

''जिगरा!'' हसैना ने मान भरे स्वर में कहा ''शाहनी, लड़का आखिर लड़का ही है। कभी शेरे से भी पूछा है कि मुँह अँधेरे ही क्यों गालियाँ बरसाई हैं इसने?'' शाहनी ने लाड़ से हसैना की पीठ पर हाथ फेरा, हँसकर बोली, ''पगली मुझे तो लड़के से बहू अधिक प्यारी है! शेरे...''

''हाँ शाहनी!''

''मालूम होता है, रात को कुल्लूवाल के लोग आए हैं यहाँ?'' शाहनी ने गम्भीर स्वर में कहा।

शेरे ने जरा रुककर, घबराकर कहा, ''नहीं शाहनी...'' शेरे के उत्तर की अनसुनी कर शाहनी जरा चिन्तित स्वर से बोली, ''जो कुछ भी हो रहा है, अच्छा नहीं। शेरे, आज शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते। पर...'' शाहनी कहते-कहते रुक गई। आज क्या हो रहा है। शाहनी को लगा जैसे जी भर-भर आ रहा है। शाहजी को बिछुड़े कई साल बीत गए, पर...पर आज कुछ पिघल रहा है...शायद पिछली स्मृतियाँ...आँसुओं को रोकने के प्रयत्न में उसने हसैना की ओर देखा और हल्के-से हँस पड़ी। और शेरा सोच ही रहा है, 'क्या कह रही है शाहनी आज! आज शाहजी क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता। यह होके रहेगा क्यों न हो? हमारे ही भाई-बन्दों से सूद ले-लेकर शाहजी सोने की बोरियाँ तोला करते थे। प्रतिहिंसा की आग शेरे की आँखों में उतर आई। गंडासे की याद हो आई। शाहनी की ओर देखा—नहीं-नहीं, शेरा इन पिछले दिनों में तीस-चालीस कत्ल कर चुका है पर...पर वह ऐसा नीच नहीं...सामने बैठी शाहनी नहीं, शाहनी के हाथ उसकी आँखों में तैर गए। वह सर्दियों की रातें, कभी-कभी शाहजी की डाँट खाके वह हवेली में पड़ा रहता था और फिर लालटेन की रोशनी में वह देखता है, शाहजी के ममता भरे हाथ दूध का कटोरा थामे हुए, 'शेरे-शेरे, उठ, पी ले।' शेरे ने शाहनी के झुर्रियाँ पड़े मुँह की ओर देखा तो शाहनी धीरे से मुस्करा रही थी। शेरा विचलित हो

गया। आखिर शाहनी ने क्या बिगाड़ा है हमारा? शाहजी की बात शाहजी के साथ गई, वह शाहनी को जरूर बचाएगा। लेकिन कल रात वाला मशवरा वह कैसे मान गया था। फिरोज की बात! ''सब कुछ ठीक हो जाएगा...सामान बाँट लिया जाएगा!''

''शाहनी, चलो तुम्हें घर तक छोड़ आऊँ!''

शाहनी उठ खड़ी हुई। किसी गहरी सोच में चलती हुई शाहनी के पीछे-पीछे मजबूत कदम उठाता शेरा चल रहा है। शंकित-सा-इधर उधर देखता जा रहा है। अपने साथियों की बातें उसके कानों में गूँज रही हैं। पर क्या होगा शाहनी को मारकर?

''शाहनी!''

''हाँ शेरे।''

शेरा चाहता है कि सिर पर आने वाले खतरे की बात कुछ तो शाहनी को बता दे, मगर वह कैसे कहे?

''शाहनी...''

शाहनी ने सिर ऊँचा किया। आसमान धुएँ से भर गया था। ''शेरे...''

शेरा जानता है यह आग है। जबलपुर में आज आग लगनी थी लग गई! शाहनी कुछ न कह सकी। उसके नाते-रिश्ते सब वहीं हैं।

हवेली आ गई। शाहनी ने शून्य मन से ड्योढ़ी में कदम रक्खा। शेरा कब लौट गया उसे कुछ पता नहीं। दुर्बल-सी देह और अकेली, बिना किसी सहारे के न जाने कब तक वहीं पड़ी रही शाहनी। दुपहर आई और चली गई। हवेली खुली पड़ी है। आज शाहनी नहीं उठ पा रही। जैसे उसका अधिकार आज स्वयं ही उससे छूट रहा है! शाहजी के घर की मालकिन...लेकिन नहीं, आज मोह नहीं हट रहा। मानो पत्थर हो गई हो। पड़े-पड़े साँझ हो गई, पर उठने की बात फिर भी नहीं सोच पा रही। अचानक रसूली की आवाज़ सुनकर चौंक उठी।

''शाहनी-शाहनी, सुनो ट्रकें आती हैं लेने?''

''ट्रकें...?'' शाहनी इसके सिवाय और कुछ न कह सकी। हाथों ने एक-दूसरे को थाम लिया। बात की बात में खबर गाँव भर में फैल गई। बीबी ने अपने विकृत कंठ से कहा, ''शाहनी, आज तक कभी ऐसा न हुआ, न कभी सुना। गजब हो गया, अँधेर पड़ गया।''

शाहनी मूर्तिवत् वहीं खड़ी रही। नवाब बीबी ने स्नेह-सनी उदासी से कहा ''शाहनी, हमने तो कभी न सोचा था!''

शाहनी क्या कहे कि उसी ने ऐसा कब सोचा था। नीचे से पटवारी बेगू और जैलदार की बातचीत सुनाई दी। शाहनी समझी कि वक्त आ पहुँचा। मशीन की तरह नीचे उतरी, पर ड्योढ़ी न लाँघ सकी। किसी गहरी, बहुत गहरी आवाज़ से पूछा ''कौन?...कौन हैं, हाँ?''

कौन नहीं है आज वहाँ? सारा गाँव है, जो उसके इशारे पर नाचता था कभी। उसकी असामियाँ हैं जिन्हें उसने अपने नाते-रिश्तों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन नहीं, आज उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है! यह भीड़ की भीड़, उनमें कुल्लूवाल के जाट। वह क्या सुबह ही न समझ गई थी?

बेगू पटवारी और मसीत के मुल्ला इस्माइल ने जाने क्या सोचा। शाहनी के निकट आ खड़े हुए। बेगू आज शाहनी की ओर देख नहीं पा रहा। धीरे से जरा गला साफ करते हुए कहा, ''शाहनी, रब्ब नु एही मंजूर सी।''

शाहनी के कदम डोल गए। चक्कर आया और दीवार के साथ लग गई। इसी दिन के लिए छोड़ गए थे शाहजी उसे? बेजान-सी शाहनी की ओर देखकर बेगू सोच रहा है 'क्या गुजर रही है शाहनी पर! मगर क्या हो सकता है! सिक्का बदल गया है...'

शाहनी का घर से निकलना छोटी-सी बात नहीं। गाँव का गाँव खड़ा है, हवेली के दरवाजे से लेकर उस दारे तक जिसे शाहजी ने अपने पुत्र की शादी में बनवा दिया था। तब से लेकर आज तक सब फैसले, सब मशविरे यहीं होते रहे हैं। इस बड़ी हवेली को लूट लेने की बात भी यहीं सोची गई थी।

यह नहीं कि शाहनी कुछ न जानती हो। वह जानकर भी अनजान बनी रही। उसने कभी बैर नहीं जाना। किसी का बुरा नहीं किया। लेकिन बूढ़ी शाहनी यह नहीं जानती कि सिक्का बदल गया है...

देर हो रही थी। थानेदार दाऊद खाँ जरा अकड़कर आगे आया और ड्योढ़ी पर खड़ी जड़ निर्जीव छाया को देखकर ठिठक गया! वही शाहनी है जिसके शाहजी उसके लिए दरिया के किनारे खेमे लगवा दिया करते थे। यह तो वही शाहनी है जिसने उसकी मंगेतर को सोने के कर्नफूल दिए थे मुँह दिखाई में। अभी उसी दिन जब वह 'लीग' के सिलसिले में आया था तो उसने उद्दंडता से कहा था, ''शाहनी, भागोवाल मसीत बनेगी, तीन सौ रुपया देना पड़ेगा!'' शाहनी ने अपने उसी सरल स्वभाव से तीन सौ रुपये दिए थे। और आज... ?

''शाहनी!'' दाऊद खाँ ने आवाज दी। वह थानेदार है, नहीं तो उसका स्वर शायद आँखों में उतर आता।

शाहनी गुमसुम, कुछ न बोल पाई।

''शाहनी!'' ड्योढ़ी के निकट जाकर बोला, ''देर हो रही है शाहनी। (धीरे से) कुछ साथ रखना हो तो रख लो। कुछ साथ बाँध लिया है? सोना-चाँदी...''

शाहनी अस्फुट स्वर से बोली, ''सोना-चाँदी!'' जरा ठहरकर सादगी से कहा, ''सोना-चाँदी! बच्चा, वह सब तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है।''

दाऊद खाँ लज्जित-सा हो गया, ''शाहनी तुम अकेली हो, अपने पास कुछ होना जरूरी है। कुछ नकदी ही रख लो। वक्त का कुछ पता नहीं।''

''वक्त ?'' शाहनी अपनी गीली आँखों से हँस पड़ी, ''दाऊद खाँ, इससे अच्छा वक्त देखने के लिए क्या मैं जिन्दा रहूँगी!'' किसी गहरी वेदना और तिरस्कार से कह दिया शाहनी ने।

दाऊद खाँ निरुत्तर है। साहस कर बोला, ''शाहनी कुछ नकदी जरूरी है।''

''नहीं बच्चा, मुझे इस घर से...'' शाहनी का गला रुँध गया, '' नकदी प्यारी नहीं। यहाँ की नकदी यहीं रहेगी।''

शेरा पास आ खड़ा हुआ। दूर खड़े-खड़े उसने दाऊद खाँ को शाहनी के पास देखा तो शक गुजरा कि हो न हो कुछ माँग रहा हो शाहनी से।

''खाँ साहिब देर हो रही है...''

शाहनी चौंक पड़ी। देर, मेरे घर में मुझे देर! आँसुओं की भँवर में न जाने कहाँ से विद्रोह उमड़ पड़ा। मैं पुरखों के इस बड़े घर की रानी और यह मेरे ही अन्न पर पले हुए...नहीं, यह सब कुछ नहीं। ठीक है...देर हो रही है। शाहनी के जैसे कानों में यही गूँज रहा है—देर हो रही है...पर नहीं, रो-रोकर नहीं, शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से। मान से लाँघेगी यह देहरी, जिस पर एक दिन बहूरानी बनकर आ खड़ी हुई थी।

अपने लड़खड़ाते कदमों को सँभालकर शाहनी ने दुपट्टे से आँखें पोंछीं और ड्योढ़ी से बाहर हो गई। बड़ी-बूढ़ियाँ रो पड़ीं। उनके दुख-सुख की साथिन आज इस घर से निकल पड़ी है। किसकी तुलना हो सकती थी इसके साथ! खुदा ने सब कुछ दिया था, मगर दिन बदले, वक्त बदले...

शाहनी ने दुपट्टे से सिर ढाँपकर अपनी धुँधली आँखों से हवेली को अन्तिम बार देखा। शाहजी के मरने के बाद भी जिस कुल की अमानत को उसने सहेजकर रखा आज वह उसे धोखा दे गई। शाहनी ने दोनों हाथ जोड़ लिए—यही अन्तिम दर्शन था, अन्तिम प्रणाम था। शाहनी की आँखें फिर कभी इस ऊँची हवेली को न देख पाएँगी। प्यार ने जोर मारा...सोचा, एक बार घूम-फिर कर पूरा घर क्यों न देख आऊँ मैं ? जी छोटा हो रहा है, पर जिनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही है उनके सामने वह छोटी न होगी। इतना ही ठीक है। बस हो चुका। सिर झुकाया। ड्योढ़ी के आगे कुलवधू की आँखों से निकलकर कुछ बूँदें चू पड़ीं। शाहनी चल दी—ऊँचा-सा भवन पीछे खड़ा रह गया। दाऊद खाँ, शेरा, पटवारी, जैलदार और छोटे-बड़े, बच्चे-बूढ़े, मर्द-औरतें सब पीछे-पीछे।

ट्रकें अब तक भर चुकी थीं। शाहनी अपने को खींच रही थी। गाँववालों के गलों में जैसे धुआँ उठ रहा है। शेरे, खूनी शेरे का दिल टूट रहा है। दाऊद खाँ ने आगे

बढ़कर ट्रक का दरवाज़ा खोला। शाहनी बढ़ी। इस्माइल ने आगे बढ़कर भारी आवाज़ से कहा, ''शाहनी, कुछ कह जाओ। तुम्हारे मुँह से निकली असीस झूठ नहीं हो सकती!'' और अपने साफे से आँखों का पानी पोंछ लिया। शाहनी ने उठती हुई हिचकी को रोककर रुँधे-रुँधे से कहा, ''रब्ब तुहानू सलामत रक्खे बच्चा, खुशियाँ बक्शे...।''

वह छोटा-सा जनसमूह रो दिया। जरा भी दिल में मैल नहीं शाहनी के। और हम...हम शाहनी को नहीं रख सके। शेरे ने बढ़कर शाहनी के पाँव छुए, ''शाहनी, कोई कुछ कर नहीं सका। राज भी पलट गया...'' शाहनी ने काँपता हुआ हाथ शेरे के सिर पर रखा और रुक-रुककर कहा, ''तैनू भाग जगण चन्ना!'' (ओ चाँद, तेरे भाग्य जागें) दाऊद खाँ ने हाथ का संकेत किया। कुछ बड़ी-बूढ़ियाँ शाहनी के गले लगीं और ट्रक चल पड़ी।

अन्न-जल उठ गया। वह हवेली, नई बैठक, ऊँचा चौबारा, बड़ा 'पसार' एक-एक करके घूम रहे हैं शाहनी की आँखों में! कुछ पता नहीं, ट्रक चल दिया है या वह स्वयं चल रही है। आँखें बरस रही हैं, दाऊद खाँ विचलित होकर देख रहा है इस बूढ़ी शाहनी को। कहाँ जाएगी अब वह?

''शाहनी, मन में मैल न लाना। कुछ कर सकते तो उठा न रखते! वक्त ही ऐसा है। राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है...''

रात को शाहनी जब कैंप में पहुँचकर जमीन पर पड़ी तो लेटे-लेटे आहत मन से सोचा, ''राज पलट गया है...सिक्का क्या बदलेगा? वह तो मैं वहीं छोड़ आई...''

और शाहनी की आँखें और भी गीली हो गईं।

आसपास के हरे-भरे खेतों से घिरे गाँवों में रात खून बरसा रही थी।

शायद राज पलटा भी खा रहा था और...सिक्का बदल रहा था...